नरहरिदास बारहठ विरचित

कृष्णावतार

[वि.सं. १७३३]

भारतीय विद्या मन्दिर शोध प्रतिष्ठान
बीकानेर, राजस्थान

प्राक्कथन

सिन्धु–वेला पर आर्द्र बालुका से घरौंदा बनाते हुए क्रीड़ामग्न शिशु से कोई पूछे–"समुद्र कहाँ है?" वह हाथ उठाकर समुद्र की ओर इंगित कर कहे–"यह समुद्र है।" क्या इस उत्तर में समुद्र की क्षण–क्षण बदलती मुद्राएं समाहित हैं? क्या इस उत्तर में वह समुद्र रूपायित हुआ है, जिसमें उत्ताल तरंगें उठती हैं, जो कभी क्रीड़ाकल्लोल करती चटुल वीचि–मालाओं से, तो कभी फेनिल फुफकारती फणी–सदृश ऊर्मियों से– कान्त–भीम रूप धारण करता है। कृष्ण का चरित भी ऐसे ही अकूल अतल समुद्र की तरह है, जो अनन्त रूपों में उद्रिक्त होता है, जो विविध मुद्राएं धारण करता है।

भगवान कृष्ण का जीवन–चित्र विविध वर्णों से रंजित है। ये वर्ण, ये रंग इतने चटकीले, इतने धूमिल, इतने विरोधी हैं कि आश्चर्य– यह चित्र बदरंग क्यों नहीं हुआ! विविध विरोधी रंगों से रंजित यह चित्र विश्व का सर्वोत्तम सुरंगा चित्र है, इन्द्रधनुषी सतरंगी चित्र, जिसमें एक ओर धरती की सौंधी गन्ध है, हरिच्छटा है, तो दूसरी ओर शोभित है, गगन–मण्डल में तना हुआ "रत्नच्छायाव्यतिकर" आखण्डल का धनुखण्ड! चित्र में भव्यता और दिव्यता है। इसमें ब्राह्म–तेज एवं क्षात्र–शौर्य, इसमें अनुराग और विराग, इसमें प्रवृत्ति और निवृत्ति, इसमें त्याग और भोग, इसमें तारुण्य का तेज और प्रौढ़ की परिपक्वता, एक साथ कौशल से ग्रथित चित्रित है। सभी रंग यथा–स्थान, कहीं भी तूलिका असन्तुलित नहीं, कहीं भी रेखा मात्र का असंयमित अंकन नहीं। यह चरित वंदनीय है, स्यात् अनुकरणीय नहीं।

कृष्ण के इस चरित से आचार्य धन्य हो गया। उन्हें कृष्ण दीखते हैं– साक्षात् भगवान्, वे अवतार नहीं, अवतारी हैं, "कृष्णमस्तु भगवान् स्वयम्।" निर्गुण–निराकार ब्रह्म में जो आनन्द है, वह गणितानन्द है, उस आनन्द को गिना जा सकता है। पर, कृष्ण? ये तो अगणितानन्द हैं, सच्चिदानन्द–घन, आनन्द के महासागर, जो मोद–प्रमोद युक्त हैं। जिनकी लीला का विलास है.... यह अखिल ब्रह्माण्ड। वे क्षर पुरुष, अक्षर रूप में अधूरे हैं– वे हैं– पुरुषोत्तम।

यस्मान्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥ (गीता, 15–18)

क्योंकि मैं नाशवान्, जड़ वर्ग से सर्वथा अतीत हूँ और माया स्थित अविनाशी जीवात्मा से उत्तम हूँ, इसलिये लोक और वेद में भी पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध हूँ। क्षर पुरुष से अतीत और अक्षर से उत्तम..... अतः मैं पुरुषोत्तम!

कृष्ण के इस विराट् चित्र को चित्रित करने में सहस्राब्दियों की जीवन व्यापी लौकिक, धार्मिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक एवं कलात्मक साधनाएं, आराधनाएं एवं कल्पनाएं समाहित हैं।

"भगवान के अवतार की या महापुरुषों की शक्तियों, गुणों और कार्यों का वर्णन करने में लेखकों, कवियों, साहित्यिकों, कलाकारों, भक्तों, सन्त–महन्तों, पौराणिकों, कथा–वाचकों आदि ने अपने–अपने अनुभव, अपनी प्रतिभा और अपनी–अपनी कला का चमत्कार उंढ़ेला है। इस प्रकार वसुदेव–देवकी का जेल में पैदा हुआ बेटा, गोकुल के नन्द–यशोदा जैसे अहीर के घर में जन्म लेकर गायें चराता, ग्वालबालों और बालिकाओं के साथ खेलकूद करता हुआ

छोकरा– आज परब्रह्म परमात्मा का पूर्ण अवतार होकर हमारे सामने आ गया है। यह हमारा इतना बड़ा अहोभाग्य है और हम तो क्या स्वयं श्रीकृष्ण भी उन भक्तों और कवियों पर बलि जाएंगे और उनके सदैव कृतज्ञ रहेंगे।"

स्व. चिन्तामणि विनायक वैद्य की सम्मति में "श्रीकृष्ण जैसा सर्वोपरि अद्वितीय पुरुष भारत में ठीक, किसी भी देश में आज तक पैदा नहीं हुआ। अलौकिक पराक्रम, अप्रतिम बुद्धिमत्ता, असामान्य स्वार्थ त्याग इत्यादि सद्गुणों के कारण श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व ऐतिहासिक ही नहीं, बल्कि काल्पनिक व्यक्तियों में भी चिर–स्थायी है।"

ऋषि–कल्प डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने कृष्ण चरित की उदात्तता एवं विराट विभूतिमत्ता का सवाक् चित्र अंकित करते हुए लिखा है–"श्रीकृष्ण को हमारे देश के जीवन–चरित्र लेखकों ने "सोलह कला का अवतार" कहा है। इसका तात्पर्य क्या है? यह स्पष्ट है कि भिन्न–भिन्न वस्तुओं के नापने के भिन्न–भिन्न परिमाणों का प्रयोग किया जाता है। दूरी को नापने के लिये और नाप है और काल के लिये और है तथा बोझे के लिये और है। इसी प्रकार मानवीय पूर्णता को प्रकट करने के लिये कला की माप है। सोलह कलाओं से चन्द्रमा का स्वरूप पूर्ण होता है। मानवी आत्मा का पूर्णतम विकास भी सोलह कलाओं के द्वारा प्रकट किया जाता है। कृष्ण में सोलह कला की अभिव्यक्ति थी, अर्थात् मनुष्य का जो मस्तिष्क मानी विकास का पूर्णतम आदर्श बन गया है, वह हमें कृष्ण में मिलता है। नृत्य, वादित्र, सौन्दर्य, वाग्मिता, राजनीति, योग, अध्यात्म, ज्ञान सबका एकत्र समवाय कृष्ण में पाते हैं। गो दहन से लेकर राजसूय यज्ञ में ब्राह्मण के चरण धोने तक तथा सुदामा की मैत्री से लेकर युद्ध–भूमि में गीता के उपदेश तक उनकी ऊँचाई का एक पैमाना है, जिस पर सूर्य की रंग–बिरंगी पेटी (स्पेक्ट्रम) की तरह हमें आत्मिक विकास के हर एक स्वरूप का दर्शन होता है।"

"श्रीकृष्ण के उच्च स्वरूप की पराकाष्ठा हमारे लिए गीता है। उपनिषद् यदि गौएं हैं तो गीता उनका दूध है। इस देश के विद्वान किसी ग्रन्थ की प्रशंसा मे इससे अधिक और क्या कह सकते हैं? गीता विश्व का शास्त्र है, उसका प्रभाव मानव–जाति के मस्तिष्क पर हमेशा तक रहेगा। संसार में जन्म लेकर हममें से हर एक के सामने कर्म का गंभीर प्रश्न बना ही रहता है। जीवन कर्ममय है, संसार कर्मभूमि है। गीता उसी कर्मयोगी का प्रतिपादक शास्त्र है। कर्म का जीवन के साथ क्या संबंध है और किस प्रकार उस कर्म का निपटारा करने में मनुष्य अपने अंतिम ध्येय और शांति को प्राप्त कर सकता है, इन प्रश्नों की सर्वोच्च मीमांसा काव्य के ढंग से गीताकार ने की है। अतएव यह ग्रंथ न केवल भारतवर्ष, बल्कि विश्व–साहित्य की वस्तु है।

कृष्ण भारतवर्ष के लिए एक अमूल्य निधि है। उनका हर स्वरूप यहां के जीवन को अनुप्राणित करता है। जिस युग में इंद्रप्रस्थ और द्वारका के बीच उनका किंकिणीक रथ बलाहक, मेघपुष्प, शैव्य और सुग्रीव नामक श्वेत अश्वों के साथ झनझनाता रहता था, न केवल उस समय कृष्ण भारतवर्ष के शिरोमणि पुरुष थे, बल्कि आज तक वे हमारी राष्ट्रीय संस्कृति के सर्वोपरि प्रतिनिधि बने हुए हैं। जिस प्रकार पूर्व और पश्चिमी समुद्रों के बीच के प्रदेश को व्याप्त करके गिरिराज हिमालय पृथ्वी के मानदण्ड की तरह स्थित है, उसी प्रकार ब्रह्म धर्म और क्षात्र धर्म इन दो मर्यादाओं के मध्य बीच की उच्चता को व्याप्त करके श्रीकृष्ण–चरित्र पूर्ण मानवी विकास के मानदण्डों की तरह खड़ा है।

जीवन के छलकते प्याले की अंतिम बूंद तक पीने वाले

श्रीकृष्ण ने बहुत लम्बी उम्र–पूर्णायु–प्राप्त की–120 वर्ष! इस जीवन के मधुर मादक प्याले को... ये अंतिम बूंद तक, तलछट तक, खूब गहराई से सघन, सांद्रता से झूम कर, गा कर, नाच कर, हंस कर पीते रहे। क्षण में जीना, वर्तमान में जीना, पूर्ण जीना– यही कृष्ण है। न भज की स्मृतियों का दुःसह भार, न पश्चाताप, न अतीत का चर्बित चर्वण और न भविष्य की आशंकाएं, न भावी के मीठे सपने, बस– वर्तमान–नावर्तमान का यह भागता क्षण– इसी को कृष्ण ने इतनी गहराई से पकड़ा कि वह काल के निषंग से छिटक कर शाश्वत बन गया... जीवन की अनंतता, विराट् विभुता, इस क्षण में समाहित हो गई। जैसे बिन्दु में सिंधु! ये क्षण ज्ञान के आलोक से आलोकित, रस से सिंचित और कर्म की ऊर्जा से प्रोद्भासित थे। इसी में कृष्ण की समग्रता, सम्पूर्णता और अक्षय्येता है।

जीवन– एक महोत्सव

माता–पिता कारागार में बंदी हैं, अतः वह शिशु दूसरे स्थान पर अपना बाल–जीवन बिताता है। यह बाल–जीवन तो काव्य है, काव्य! बाल्य–जीवन शत–सहस्र रंगों से रंगा हुआ..... जिसने भारतीय जन–मानस के मरुप्रदेश में पीयूष–मंदाकिनी प्रवाहित की और आज भी उसके स्निग्ध छींटों से हम पुलकित, रोमांचित, हर्षित होते हैं। वहीं तरणि–तनुजा के तट पर किसी चंद्रिका धवल राकानिशि में, जब उस नटनागर की अघटित घटना पटीयसी योगमाया–सी नादब्रह्म–स्वरूपा मुरली ब्रज के करील कुंजों में बजती है, तो आर्य–मार्ग से अतिक्रांत रास का समारंभ होता है। रास–रसों का समूह रास–एक ब्रह्मांड व्यापी शाश्वत नृत्य, जो नूपुरों से झणझणायमान है, किंकिणियों के क्वणन से, रशनाओं की क्षुद्र घंटिकाओं के रणन से झंकृत है। जीवन मानो एक लीला है, एक महोत्सव है, एक नृत्य है– आनंद का, मोद–प्रमोद का, विशुद्ध निराविल घन रूप! आज भी भारत के गांव–गांव उसी बांसुरी की धुन पर नृत्य–विभोर है और उसी का सुमधुर स्वर–दूर–दूर दिगंतव्यापी हो– बुद्धि, विज्ञान और तर्क से जड़ क्षितिजों को मुखरित कर रहा है।

शाश्वत मां की क्रोड में चिरंतन शिशु की क्रीड़ा

धन्य है ब्रज, ब्रज के यायावर अहीर, यमुना के कछार, वहां के रेणु–मंडित ग्वाल–बाल और धन्य है ब्रज के गोप–गोपी और सर्वोपरि धन्य हैं मां यशोदा और नंद बाबा!

मां तो बस एक ही हुई– यशोदा मैया और बालक कुंवर कन्हैया। बचपन आए, बच्चे झूले पर न झूलें, घुटनों के बल न रेंगे, धूल में न खेलें, तोड़फोड़ न करें, शरारत न करें, आपस में धक्कम–धक्का न करें, लुकने–छिपने का खेल न खेलें, न झूठ, न शरारत, न बहाना, न शिकायत, न रूठना–मचलना, न झगड़ना.... तो फिर कहां उमंग, कहां उत्साह और कहां नित–नूतन स्पंदन! पर, यह ब्रज है, जहां है – बाल्य–जीवन की अनंत किलकारियों से तरंगित महासागर!

जन्मोत्सव– उत्सव पर उत्सव

नंद महर के घर बच्चा जन्मा है। सारा गोकुल उमड़ पड़ा है। घर द्वार, आंगन

झाड़–बुहार दिए गए, सुगंधित जल का छिड़काव हुआ है। ध्वजा–पताकाएं लहराने–फहराने लगी हैं, पल्लवों की वंदनवारों से घर–द्वार सजाए गए हैं। ग्वाले अंगरखों और पगड़ियों से सज्जित हो बधाई देने आए हैं। गोपियों की चोटियों में गूंथे हुए फूल बरसते जा रहे हैं। हल्दी–तेल मिला, एक दूसरे पर छिड़क रहे हैं।

(अ) व्रजः सम्मृष्ट संसिक्त द्वाराजिर गृहान्तरः।
चित्रध्वजापताका स्त्रक् चैल पल्लव तोरणैः॥
(आ) महार्घ वस्त्राभरण कंचुकोष्णीष भूषिताः।
गोपाः सभाययू राजन्। नानोपायन पाणयः॥ (पंचम अध्यायः दशम स्कंध)

जब भी मौका आया है, ब्रज ने नए उल्लास का अनुभव किया है। बच्चे ने करवट बदली है या वह करवट बदलने के कगार पर है, तो एक उत्सव हो, ब्रज में जैसे उत्सवों की भीड़–भाड़ है–जीवन ही जैसे एक उत्सव है। घुटनों के बल चलना, धूल में खेलना, जानवरों की बोली बोलना, माखन चोरी करना, गायें चराने जैसे हजारों प्रसंग हैं। इन परमहंसों की संहिता में– श्रीमद्भागवत में –महर्षि वेदव्यास द्वारा रचित मात्र, पर, जो कही जा रही है–शिशुवत् महर्षि शुकदेव के मुखारविंद से। हमारे पास पुराण थे, पर, यह महद्पुराण है और यह है "परमहंस संहिता।" अभी तक हमारे पास "निगम कल्पतरु" तो था, पर यह है "गलितफल"–एकदम पका हुआ फल–जैसे अब भरा, अब भरा! फिर शुकदेव के मुख से निःसृत होने से यह परम आनंदमयी सुधा से परिपूर्ण हो गई है...

निगम कल्पतरोर्गलितंफलं
शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम्।
पिबत भागवतं रसमालयं
मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः॥

कोई भी वेला हो–मंगल गीत हैं, बाजे हैं, बधाइयां हैं, भीड़–भाड़ है, सजावट है–जीवन जैसे संघर्ष नहीं, एक लीला है, एक खेल है, एक संगीत है।

यशोदाजी औत्थानिक उत्सव (करवट बदलने के अभिषेकोत्सव) में डूबी है, जब देखती है कि लल्ला के नेत्रों में नींद आ रही है, तो कन्हैया को धीरे–से शय्या पर सुला देती है। थोड़ी देर में आंखें खोली तो रोने लगे, मां ने व्रजवासियों के स्वागत–सत्कार में सुना नहीं कि कान्हा रोते–रोते पांव उछालने लगे––छकड़े के नीचे सोए थे उनके कोमल पांव के लगते ही छकड़ा उलट गया––दूध–दही और अनेक रसों से भरी मटकियां फूट गईं।

बच्चे का रोना, आंखें मूंदना, फिर खोलना, भूख लगने पर रोना, रोने पर ध्यान न देने से खीजना, हाथ–पांव उछालना–ये वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक हैं, शिशु–स्वभाव के ये सार्वभौम चित्रण विचित्र हैं और सचमुच कालजयी हैं।

इस मधुर बाल–लीला के बीच–बीच में कितने ही उपद्रव होते हैं, कितनी बाधाएं, कितने विघ्न थोड़ी देर के लिए जरा–सी अशांति– फिर स्वस्त्ययन, पूजा–पाठ–दान। पुनः जीवन का वही उल्लास–हास!

घुटुरुन चलत

राम–श्याम अब घर के आंगन से बाहर आ गए हैं– घुटनों और हाथों के बल बकैयां

से चल–चल कर गोकुल में खेलने लगे हैं। जब वे कीचड़ की अंगराग लगा कर लोटते तो उनकी सुंदरता बढ़ जाती थी। माताएं उन्हें देख कर दौड़ पड़तीं। हृदय से लगातीं। जब वे दूध पीने लगते, बीच–बीच में मुस्कराकर माताओं की ओर देखने लगते, तो वे भोला–भाला मुंह देखकर आनंद के समुद्र में डूबने–उतराने लगतीं।

सारा गोकुल निहाल: सारा भारत निहाल

रोहिणी और यशोदाजी नहीं, अब गोकुल की व्रजांगनाएं बाल–लीलाओं में शामिल हो गई। घर का काम बंद–मंद। अब तो वही स्वर्ग दुर्लभ शिशु–क्रीड़ाएं–

राम–श्याम थोड़े बड़े हो गए हैं। अब शरारतें शुरू। बैठे हुए बछड़े की पूंछ मरोड़ लेते हैं और बछड़े उन्हें घसीटते हुए दौड़ने लगते हैं। गोपियां अपने घर का काम–धंधा छोड़कर देखती रहती हैं और हंसते–हंसते लोटपोट होकर परम आनंद में मग्न हो जाती हैं।

व्रज से जो आनंद का सागर उमड़ा, वही आज देश के कोने–कोने में उमड़ रहा है। शताब्दियों भर का उदासी भरा चिंतन, निराशा के कुहरे से छाया हमारा धूमिल दृष्टिकोण, सब ध्वस्त–विध्वस्त! कृष्ण का नाम लेते ही नाचता–गाता, हंसता–खेलता, एक चित्र उभरता है–जिसके सामने कहां ठहर पाता है– हमारा गुरुगंभीर, प्रशांत निस्तरंग चिंतन? जीवन के रेगिस्तान में अचानक विनोद की लोनी लतिकाएं झूमने लगती हैं, हास्य के ठहाकों से और ठिठोलियों से! लगता है– जीवन ही सत्य है, यह व्रज शाश्वत है, यहां की लीला नित्य है, यमुना,गोपी,ग्वाल, रास, महारास सभी नित्य!

प्रलय–सागर में डूबते–उतरते महर्षि मार्कण्डेय की तरह हमें दीखता है– नव सृष्टि का अक्षय वट निकल आया है, उसके पल्लव–पुटों में शिशु बालमुकुंद अपने मुख में पैर का अगूंठा लिए शाश्वत शिशुत्व की महिमा को उजागर कर रहे हैं।

हमको नित्य लगता है, मां यशोदा के रूप में विश्व–मां पुकारती हुई कहती है–

''ओ कन्हैया! प्यारे कन्हैया! खेलते–खेलते थक गए हो, बेटा! बस करो–ब्रजराज भोजन करने बैठ गए हैं, वे अभी तक तुम्हारी बाट जोह रहे हैं। तुम्हारा एक–एक अंग रज से लथपथ हो गया है, आओ, जल्दी आओ।''

रास महोत्सव

रास एक वह क्षेत्र है, जहां काम–अंध–हीन वृत्ति से ही प्रवेश किया जा सकता है। यह वह रूप है, जहां काम भुजंगम पर नृत्य किया गया है, जहां मदन को मोहित–मूर्च्छित किया गया है– यह मदन–मोहन का एक सनातन चित्र है। यहां काम का ऊर्ध्व संतरण है, काम का उदात्तीकृत रूप है। यहां केवल प्रेम का भास्कर उदित है, वासना का तिमिर तिरोहित है।

चैतन्य चरितामृत में गोपी–प्रेम का यह वर्णन प्रेम की दिव्यता प्रकट करता है–

आत्मेन्द्रिय प्रीति–इच्छा, तार नाम काम।
कृष्णेन्द्रिय प्रीति इच्छा, धरे प्रेम नाम॥
आत्म–सुख–दुख गोपी ना करे विचार।
कृष्ण–सुख हेतु करे सब व्यवहार॥
अतएव काम प्रेमे बहुत अन्तर।

काम अन्धतम प्रेम निर्मल भास्कर।
अतएव गोपी गणे नाहिं काम गन्ध।
कृष्ण–सुख–हेतु मात्रकृष्णेर सम्बन्ध॥

कालिंदी की रमण–रेती, गोपांगनाओं के बीच कृष्ण यों लगते हैं– जैसे पीली–पीली दमकती स्वर्ण–मणियों के बीच में ज्योतिर्मय नीलमणि दमक रही हो। जैसे श्याम घन–घटा के बीच चमकती गोरी गोपियां बिजली–सी हों।

स्मरण रहे, ये गोपांगनाएं ऋचा–स्वरूपा हैं, ये मृण्मयी नहीं, चिन्मयी विग्रह–स्वरूपा हैं, ये अनुग्रह–प्राप्त भक्तों का प्रतिनिधित्व करती हैं– तभी तो परम ज्ञानी इन ब्रज–वनिताओं के चरण–रज से अपने को पुनीत करने के आकांक्षी हैं।

(2)

भारतीय साहित्य के तीन उपजीव्य ग्रंथ है– रामायण, महाभारत और श्रीमद् भागवत–महापुराण। लगता है– शौर्य, नैतिक आदर्श और मर्यादा के मध्य कुछ शेष रह गया था– कुछ का बहुत कुछ– यानी जीवन का माधुर्य, जीवन का लावण्य, जीवन का स्वारस्य– उसी की सम्पूर्ति का नाम है– भागवत। जिसे आचार्यों ने प्रस्थानत्रयी के बाद प्रस्थानचतुष्टय के रूप में गौरवान्वित किया, भावों से अभिषिक्त किया।

भागवत का दशम स्कन्ध भगवान कृष्ण की मधुर लीलाओं का उमड़ता–कल्लोल करता अमृत–सागर है। भागवत की रचना ललित संस्कृत में है– यह केवल इतिवृत्त का शुष्क कथन मात्र नहीं, रसमयी कर्ण–कोमला, श्रुति मधुरा, शैली का प्रवाह है, जिसमें सहृदय भावक ही नहीं, अद्वैतवाद के परम ज्ञानी भी वंशीरव से ऐसे मुग्ध होते हैं– उनके सामने सहस्रार में महामिलन का अनाहत नाद (अणहद गुंजार) फीका और नीरस प्रतीत होता है।

भागवती कथा को आधार बनाकर देशी भाषाओं में संख्यातीत रचनाओं का निर्माण हुआ है। इन रचनाओं से देश के सभी वर्ग भागवत के माधुर्य से अपने को रससिक्त करते रहे हैं।

राजस्थानी में भी कृष्ण चरित के प्रति अनुराग रहा है। महाकवि पृथ्वीराजजी की 'वेलि' डिंगल की एक प्रथित यशः अमर कृति है। अनेक रचनाएं डिंगल में हैं। डिंगल, पिंगल और राजस्थानी की तीन धाराओं में यहां की धरती सिंचित रही है। ब्रज भाषा से यहां के लोग बखूबी परिचित रहे हैं। संभवतः इसी भावना से अनुप्राणित होकर राजस्थान के यशस्वी कवि नरहरिदासजी ने ब्रजभाषा में "अवतार चरित्र" लिखा, जिसके अन्तर्गत यह "कृष्णावतार" प्रबंध रूप से रचित है।

"कृष्णावतार" प्रबन्ध काव्य है, जिसका आधार भागवत का दशम स्कंध है। नरहरिदास जी भागवत के परम विद्वान, भक्तिभाव से भरे हुए सहृदय परिशीलन करने वाले कवि हैं। कवि ने बराबर भागवत के अध्यायों की स्निग्ध छाया में अपने को रखा है। संस्कृत के भावों में डूबे हैं, फिर उनके विशिष्ट अंशों को अपनी प्रेम–भावना में भर कर अपने सामने हमेशा श्रोता–समूह को लक्ष्यीभूत रखा है। इसी कारण काव्य में दशम स्कन्ध के सभी अध्यायों की कथा है– कथा का मूल बराबर बना है, विशिष्ट घटनावली अटूट है, काव्य का माधुर्य पूर्ण रूप से नहीं, पर, स्निग्ध रूप सर्वत्र छहरा है। विस्तार को कम करते हुए भी प्रवाह अबाध है।

भाषा में एक सावधानी है– कहीं चारणी शैली न आ जावे, कहीं संस्कृत की प्रभूत

शब्दावली का जमघट न हो जावे या ब्रज में कहीं राजस्थानी भाषा के आंचलित शब्दों की घुसपैठ न हो– कवि का भाषा पर पूर्ण अधिकार है, इससे संस्कृत की तत्सम शब्दावली का संयत प्रयोग है, ब्रज का मिठास बना हुआ है। भाषा की सरलता, प्रासादिकता और भाव प्रकट करने की क्षमता सर्वत्र अक्षुण्ण है।

कवि के मन में कथा–वाचक की चतुरता है। कवि जानता है–जन–साधारण भागवत की संस्कृत से दूर है, पर– कथा से चिरपरिचित है, ब्रज भाषा से भी निकट का परिचय है– क्योंकि जहां कृष्ण जाएंगे, वहां ब्रज–बोली भी किसी–न–किसी रूप से अवश्य अपनी मधुरता बिखेरेगी। यदि कोई श्रोता–समूह को यह "कृष्णावतार" की कथा संगीत–बद्ध कर– मधुर स्वरों में सुनाए, तो राजस्थान के सभी अंचलों की जनता इसे हृदयंगम कर सकती है। कृष्ण–चरित के जो अनुरागी हैं, पर, संस्कृत के गहरे अभ्यासी नहीं है– वे भी इस चरित काव्य का पारायण कर, भगवान कृष्ण के दिव्य चरित के सरोवर में निमज्जित कर– अपने को तार सकते हैं। स्थान–स्थान पर फल–श्रुतियां कवि के मनोभावों को उजागर करती दीखती हैं–

(क) गर्भ–स्तुति ब्रह्मादिकनि, जो कीनी कर जोरि।
गावें सुनें सु गर्भ के बस नहीं परे बहोरि॥

(ख) काली दमन जु कृष्न की, कहिहैं लीला कोइ।
ततो सर्व भय सर्प तें, हित जुत निर्भय होइ॥
क्रीड़ा नंद किसोर की, कवि नरहर जस कीन।
भनें सुनें ताकहं भगति, बाढें नित नवीन॥

काव्य के कतिपय मार्मिक स्थल

नीति–कथन एवं संवाद–सौष्ठव :– "कृष्णावतार" में नीति–कथन एवं संवाद–सौष्ठव देखते ही बनता है। यहां कतिपय स्थल द्रष्टव्य है–

(अ) मंत्री– वैसंनर अरु वयर व्याधि, दिन वढन न दीजै।
जथा जतन काचे सु जांनि, निर्मूल करीजै॥

उग्रसेन– अबला वध अन उचित, यह जु हमतैं नहीं होई।
दईवी माया दुगम, करैं तिहिं लगि कहा कोई॥

(आ) गोपी– देह चीर हम तेरी दासी। होत सखिन महिं अति उपहासी॥
स्याम हमहिं अति सीत सताई। करिहैं जो तूं कहैं कन्हाई॥

श्रीकृष्ण– तुंमहिं कहत हम दासी तेरी। मानों तो आग्या यह मेरी॥
एक–एक भावै तुम आवहु। जाती हुति अंबर ले जावहु॥

(इ) नीति– अहि पांन दुग्ध विस होइ अंत। त्यौं तजे नाहिं खलता असंत॥

भाग्यवाद :– कवि नरहरिदास अपने काव्य में भावी की प्रबलता का यत्र–तत्र दिग्दर्शन कराते रहे हैं, कुछ अंश द्रष्टव्य हैं–

–शुभ अशुभ कर्म संभूत सब, जगत सुरासुर जोइहैं।
सो टरै नांहि नरहर सुकवि, होनहार सौ होइहैं॥

–कहो भ्रात अब मारिहो कोनें। होत दईव वस जो कछु होनें॥

पतिव्रत–धर्म की महिमा :– भारतीय नारी के लिए पति परमेश्वर–तुल्य माना गया है। पति सेवा पत्नी का पुनीत कर्तव्य हैं। भारतीय संस्कृति के इन शाश्वत मूल्यों का स्मरण दिलाते हुए कवि कहता है–

वेद विदत अृषवर यह वांनी। वनिता पति देवता वखांनी॥
पति सेवा हित सुं करि प्यारी। नियत लहें सदगति सो नारी॥
जड जोगी खल जर्ठ जुवारी। वांमन वंस भ्रष्ट विभचारी॥
विगुन विरूप विराग विसेषी। निंदक दईव दुष्ट द्विज द्वेषी॥
दयाहीन दुर्मत दुरवादी। वेस वसन दरिद्र विवादी॥
कलही कुटिल क्रूर क्रम कातर। पाप श्राप हित पतित कुपातर॥
अंध अलस अंगहीन अभागी। अति मति अनिषिध सुख त्यागी॥
कृत घातक कृत चोर कुकरमी। धूर्त धृष्ट सठ आदि अधरमी॥
नारि तथापि तजै पति नांही। महा कुलछन ए जिन मांही॥

दुर्लभ देह–धर्म :– जीव–योनियों में मनुष्य–योनि को दुर्लभ माना गया है, अतः कवि आदर्श–जीवन की कामना करता हुआ भगवद्भक्ति का आह्वान करता है–

पुरुष तृया तृय पुरुषाहिं धूतैं। पति को छाडि वढावहिं पूतैं॥
मन हित वसे ग्रेह तिंह मांही। नाराइन कहं चींतत नाहीं॥
जनम मनुष्य दुर्लभ लहि जाठर। प्रभु तें विमुख उपासत हें पर॥
कामादिक सुख सूकर कूकर। तेऊ रहत निरंतर ततपर॥

मौलिक उद्भावनाएं :– ''कृष्णावतार'' में कवि ने अपनी मौलिक उद्भावनाओं से काव्य–सौन्दर्य में वृद्धि की है। जैसे, रात्रिकाल में कामातुर कालनेमि असुर द्वारा उग्रसेन का रूप धारण करके उनकी पत्नी से सहवास द्वारा कंस–जन्म। गर्भकाल में रानी द्वारा पति का कलेजा खाने की इच्छा करना। फलतः युक्तिपूर्वक बकरे का कलेजा खिलाकर रानी की इच्छा पूर्ण की जाना। यह प्रसंग जहां मौलिकता लिए हुए है, वहीं गर्भवती स्त्री की मनोदशा का मार्मिक चित्र भी उपस्थित कर देता है–

दुर्जन त्रीया अवस्त्रा देखी। विखम विरोध अनंग विसेखी॥
उग्रसेन कौ रूप कर्‌यो अर। निसा समें आयौ सो निसचर॥
ठग तिहिं कपट जु अैसो ठान्यौ। पटरानी सौ नाहि पिछान्यौ॥
इहां रितुदांन दयौ तिहं आसुर। जात अग्यात भयौ आनंद उर॥
उग्रसेन सज्या–ग्रिह आयौ। पैं ताहू यह मर्म न पायौ॥
आसुर गर्भ थित भई तृया कै। तब तें उदर ताप वढि ता कैं॥
दैत तृया के गर्भ जु दारुन। करत दुष्ट अभिलाष सकारन॥
विवरन वदन देह अति विह्वल। दिन–दिन होत सु रानी दुर्बल॥
नृपति तृया कै दसा निहारी। पुनि ताकी इकु सखी प्रचारी॥
सखी– तिहिं पूछ्यौ स्वामन तेरो तन। खीन होत काहें को खन–खन॥
रानी– सुंनि सखि तोकहं मर्म सुनाऊं। पति को कहूं कलेजो पाऊं॥
मन अभिलाष फलैं तो मेरौ। ताहि खाइ मांनहुं गुन तेरौ॥
सखी नृपहि वृत्तांत सुनायौ। बहुरि राइ कोऊ गुनी बुलायौ॥

कागद मय राजा तिहि कीनौ। देह मध्य अज कालज दीनो॥
भूषन वसन सुगंध बनाए। उग्रसेन मांनहुं नृप आए॥
सौ पुतरा एकांत सुवायौ। वनिता कहं ले सखी बतायौ॥
इहां रानी मन हर्षित आई। पंथ परी मांनहुं निध पाई॥
बैठि उचकि हियैं पर अतिबल। खाइ कलेजा भई तृप्त खल॥

सौंदर्य–वर्णन :– ''कृष्णावतार'' में यमुना, वृंदावन, नाग–दमन, वच्छाहरण, वस्त्राहरण, युद्ध एवं रूप–वर्णन के दृश्य अत्यन्त चित्ताकर्षक हैं। कतिपय अंश देखिए–

(क) वच्छाहरणोपरांत ब्रह्मा द्वारा कृष्ण–स्तुति–

कवित्त

महिमा कृष्ण अमेव, निरखि थकि रह्यौ अजोनज।
सघन नील तन स्याम, परम करुना दृग पंकज॥
विमल वदन कच वक्र, कर्ण मंडित चल कुंडल।
भ्रकुटि भाव भ्रुव भंग, लसित मनुं अलिसुत चंचल॥
आमोद स्वास नासा अतुल, अरुन अधर दाडिम दसन।
सोभा अनूप नरहर सुप्रभु, मोहत महा मनोज मन॥
कंछु कंठ, मृगराज–कंध, भुज जांनु प्रलंबित।
उदर रेख सोभा अभूत, उन्नत उर आयत॥
वनि नितंब भरि विहत, कदल जंघा कटि केहरि।
चरन सरोरूह नख रत्त, कृत चाल मत्त करि॥
कमला उरोज कुंकुम कलित, कर पलव मर्दन करे।
सब भाइ होहु कहि कमल सुत, हित मम पद पंकज हरे॥2॥

(ख) पूतना का श्रृंगार करके गोकुल में आगमनः

छंद पद्धरी

इकु हुती पूतना तृय असाध। पुनि कंस करन पठई उपाध॥
विध जुक्त वसन भूषन वनाव। भामिनि करत अति हाव–भाव॥
लट छुटी विमोहत सरस वैंनं। निःसंक भ्रमावत दिघ नैंन॥
उचकति कुच सोभा अंग–अंग। मुरि–मुरि है चितवत गति मतंग॥
पापिनी खात मुसकात पांन। उफनात रूप सोभा अमांन॥
सब गोप ठगे से रहे ठांम। वस मोह परे सो देखि वांम॥
तन रूप अनूपंम वसन ताहि। चकि रही गोपिका वदन चाहि॥
वस भावी काहुन पूछि बात। तूं कोंन आहि अरु कहां जात॥

(ग) कालीय–दमन का दृश्यः

छंद पद्धरी

शुभ किंकनि मनि नगमय समेटि। पट पीत वसन कटि तट लपेटि॥
उहि कदंब सिखर पर चढि उछाह। अवलोकि नीर तहां अति अथाह॥
पुनि लई झंप पौरुष प्रमांन। जल जंतु वज्र आघात जांन॥
सत धनुष नीर चहुं ओर आइ। पसर्‌यौ अगाध अवकास पाइ॥

अवगाह. सलिल गज. मत्त ओप। कैधों मंदराचल कृष्न कोप॥
कोलाहल सुनि चहुंघां करालं। काली सु जग्यौ मनु प्रलयकाल॥
रसना सचाल ज्वाला जु नैंन। हुंकार सब्द मुख गरल फेंन॥
अरसात अंग मोरत अभीत। उपनात रोस आयौ अनीत॥
इहां कृष्न बाल अविलोक अेक। अहि बढ्यो गरल अरु बल अनेक॥
लीनों लपेट तन नंदलाल। करि कोप महा काली कराल॥
श्रीखंड वृख्य ज्यों पनग संग। आवरत कृष्न प्रति अंग–अंग॥

भाषा–शैली :– उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि कवि की भाषा–शैली सरल, सुबोध, चित्रोपम एवं आनुप्रासिक है। कवि ने यथा–संभव वयण–सगाई अलंकार का निर्वाह किया है। वयण–सगाई अलंकार एवं वर्णानुप्रास के क्रम मे निम्नांकित दो दोहे द्रष्टव्य हैं–

वीती विविध विलास वन, सब निसि स्यामास्यांम।
विसम भयौ मंदिर वसत, वासर विरह विरांम॥

कोऊ भजते कहं भजै, कोऊ भजते न भजंत।
भजते अनभजते अभज, को हैं सो धौं कंत॥

गाथा, कवित्त, दूहा, सोरठा, उधोर, पद्धरी, द्विख्यरी, एवं सवैया आदि छंदों में ग्रथित यह कृष्ण–भक्तिकाव्य वस्तुतः भक्त कवि की कमनीय कृति है। काव्य का वास्तविक रसास्वादन तो ग्रंथ के अवगाहन से ही संभव है। कवि कृपासिंधु कृष्ण के रूप एवं उनकी महिमा का गुणगान करते हुए लिखता है–

सवैया

कृष्न–कृष्न हरि केसव कृपाल,
हरि करुना निधांन हरि कारुन–करन हैं।
भव के तरन हरि, भय के हरन हरि,
कमल नयन हरि, कमल वरन हैं॥
ब्रज के विहार हरि, कंस के संघार हरि,
गज के उधार, गिरिवर के धरन हैं।
दुख के खयार, अघवन के कुठार,
जोग के सिधांतसार, नरहर के सरन हैं॥

ग्रंथ मे पूतना एवं कंस–वध, मल्ल–युद्ध एवं बाणासुर–संग्राम, वस्त्राहरण एवं वच्छाहरण जैसे अनेक प्रसंगों में कवि की काव्य–प्रतिभा दृष्टिगत होती है। सारतः कहा जा सकता है कि कविवर नरहरिदास का यह प्रबंध काव्य ''कृष्णावतार'' काव्य और भक्ति–दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। भक्ति एवं कविता का मणि–कांचन संयोग भारतीय संस्कृति का वैशिष्ट्य है। भाषा सरल, प्रवाहमयी और स्वच्छ है।

–पं.अक्षयचन्द्र शर्मा